[2015] 5 एस. सी. आर. 643

पी. सुसीला और अन्य

बनाम

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और अन्य

(सिविल अपील सं. 2891-2900/2015)

16 मार्च, 2015

[टी. एस. ठाकुर और रोहिंटन फाली नरीमन, जे. जे.]

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विनियम (विश्वविद्यालयों और उससे संबंधित संस्थानों में शिक्षकों की नियुक्ति और आजीविका प्रशस्ति के लिए आवश्यक न्यूनतम योग्यता का आदेश) (तीसरा संशोधन) विनियम 2009 - विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों/संस्थानों में व्याख्याताओं की भर्ती और नियुक्ति - नेट/स्लेट को न्यूनतम पात्रता शर्त के रूप में मानना; और यह कि पहले यू.जी.सी. ने एम.फिल और एम.फिल उम्मीदवारों को उक्त पात्रता परीक्षा से मुक्त किया था, लेकिन बाद में संघ सरकार ने नेट/स्लेट को न्यूनतम पात्रता शर्त के रूप में शामिल करने की एक दिशा-निर्देश जारी की; और कहा गया कि ये विनियम यू.जी.सी. अधिनियम के प्राधिकृत शक्तियों के बाहर जारी किए गए थे, इस प्रकार, पात्रता शर्तें 31.12.2009 से पहले प्राप्त की गई एम.फिल और एम.फिल डिग्री पर लागू नहीं होगी। अभिनिर्धारित: केंद्र सरकार के निर्देशों के उद्देश्य, 2009/2010 के

यू.जी.सी. विनियमों के साथ, उच्च शिक्षा के मानकों की उत्कृष्टता को बनाए रखना है - इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर, राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा पास करने की न्यूनतम पात्रता शर्त निर्धारित की गई है, इसलिए वैध है - डॉक्टरेट/एम.फिल धारकों द्वारा विनियमों के विरुद्ध दायर याचिकाएँ खारिज की गई, हालांकि, विनियम भावी प्रभाव से होंगे - विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956- धारा 20, 22, और 26|

अपीलों को खारिज करते हुए अवमानना याचिका का निस्तारण करते हुए, न्यायालय ने **अभिनिर्धारित किया**:

1.1 केवल तभी कोई निहित अधिकार उत्पन्न होगा अगर अपीलार्थियों में से किसी को वास्तव में व्याख्याता/सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया गया होता। उस तारीख तक, किसी भी अपीलार्थी का कोई निहित अधिकार नहीं है। सबसे अधिक, अपीलार्थी केवल यह तर्क दे सकते थे कि उनका व्याख्याता/सहायक प्रोफेसर के पद के लिए विचार किया जाने का अधिकार है। यह अधिकार हमेशा न्यूनतम पात्रता शर्तों के अधीन होता है, और जब तक अपीलार्थियों को नियुक्त नहीं किया जाता, विभिन्न समयों पर विभिन्न शर्तें निर्धारित की जा सकती हैं। बस इसलिए कि एक नेट परीक्षण के रूप में एक अतिरिक्त पात्रता शर्त निर्धारित की गई है, इसका मतलब नहीं है कि अपीलार्थियों के किसी भी निहित अधिकार को प्रभावित किया जाता है, और न ही यह तात्पर्य है कि ऐसी न्यूनतम पात्रता शर्त को निर्धारित करने वाले विनियमन का भूतलक्षी प्रभाव होगा।

ऐसी स्थिति केवल भावी होगी क्योंकि यह केवल नियुक्ति की स्तिथि में होगी। [पैरा 15] (661-जी-एच; 662-ए-सी) |

1.2 यह प्रस्तुत किया गया कि दिनांक 12 नवम्बर, 2008 को केंद्र सरकार के दिशा-निर्देश की भाषा के आधार पर सरकार चाहती थी कि यूजीसी को केवल 'सामान्य रूप से' नेट को एक योग्यता के रूप में निर्धारित करना है। लेकिन इसका मतलब नहीं था कि यू. जी. सी. को इस योग्यता को किसी छूट की प्रावधान के बिना निर्धारित करना चाहिए। यह सरल कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि 'सामान्य' शब्द 'अनिवार्य' शब्द से पहले है और यह स्पष्ट है कि दिशा-निर्देश की भाषा का पालन उपनाम और आत्मा दोनों में 2009 और 2010 के यू. जी. सी. विनियमनों द्वारा किया गया है। [पैरा 16] [662-डी-एफ]

1.3 केंद्र सरकार के निर्देशों के साथ साथ 2009/2010 के यूजीसी नियमों का उद्देश्य यह है कि उच्च शिक्षा के मानकों में उत्कृष्टता को प्रायः बनाए रखा जाना चाहिए। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा पास करने की एक न्यूनतम पात्रता शर्त निर्धारित की जाती है। सत्य है कि पहले यूजीसी द्वारा छूटें निर्धारित की गई हों, लेकिन केंद्र सरकार अब एक नीति के रूप में मानती है कि किसी भी छूट का उच्च शिक्षा के मानकों में शिक्षण मानकों के उत्कृष्टता को कमजोर कर सकता है जो यूजीसी द्वारा शासित विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों/संस्थानों में शिक्षण मानकों का मूल्यांकन करता है। जाहिर तौर पर, इसमें कुछ भी मनमाना

या भेदभावपूर्ण नहीं है, वास्तव में यह यू. जी. सी. का मुख्य कार्य है कि ऐसे मानकों को कमजोर नहीं होने दें। [पैरा 17] [662-जी-एच; 663-ए]

1.4 एक वैध अपेक्षा हमेशा अधिक सार्वजनिक हित के साथ मुकर जानी चाहिए। मौजूदा मामले में व्यापक जनहित यूजीसी संस्थानों में पढ़ाने के लिए उच्च योग्य सहायक प्रोफेसरों से कम नहीं है। भले ही, इसलिए, निजी अपीलकर्ताओं को वैध अपेक्षा थी कि इस तथ्य को देखते हुए कि यूजीसी ने उन्हें नेट से छूट दी है और यह कहना जारी रखा है कि 12 नवंबर, 2008 के सरकारी निर्देश के बाद भी यूजीसी अधिनियम द्वारा शासित संस्थानों में पढ़ाने के लिए सबसे मेधावी उम्मीदवारों के चयन के व्यापक सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए ऐसी छूट दी जानी चाहिए। पैरा 20] [665-8-डी]

1.5 यह बताया गया है कि केंद्र सरकार के द्वारा यूजीसी अधिनियम के अनुच्छेद 20 के तहत दिए गए निर्देश राष्ट्रीय उद्देश्य से संबंधित नीति के प्रश्नों के संदर्भ में होती हैं; और यह नियमन बनाने की शक्ति अधिनियम के अनुच्छेद 20 के तहत जारी निर्देशों के अधीन होती है। यह तथ्य कि यू.जी.सी एक विशेषज्ञ संगठन है, यह मामले को आगे नहीं ले जाता है। यूजीसी अधिनियम में विचार किया गया है कि ऐसे विशेषज्ञ निकाय को केंद्र सरकार द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार कार्य करना होगा। [पैरा 22] [667-ई-एफ]

1.6 इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने एक विशेषज्ञ समिति को सलाह दी, जिसने यह निर्धारित किया कि यदि ऐसे विश्वविद्यालय को पीएच.डी. डिग्री प्रदान करने पर समिति द्वारा निर्धारित ग्यारह मानदंडों में से छह संतुष्ट थे। फिर ऐसी पीएच.डी. डिग्री ऐसे व्यक्ति को नेट परीक्षा उत्तीर्ण करने की अतिरिक्त योग्यता के बिना व्याख्याता/सहायक प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हता प्राप्त करने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि यूजीसी ने स्वयं समिति की इस सिफ़ारिश पर अमल नहीं किया है। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने अपने द्वारा जारी अंतिम निर्देशों इस समिति की सिफारिश को प्रभावी बनाना उचित समझा। जब यूजीसी ने स्वयं उक्त समिति की सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया, तो यह समझ में नहीं आता कि उच्च न्यायालय ने ऐसी सिफारिशों को कैसे लागू करना चाहा। इसलिए, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले को पूरी तरह से रद्द किया जाता है। [पैरा 23] [667-जी-एच; 668-ए-सी]

1.7 एसएलपी (सिविल) संख्या 3054-3055/2014 में, एक बार फिर उसी उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ द्वारा निर्णय एक निष्कर्ष पर आया| इस मामले ने भी काफी तनाव दिया| उसी उच्च न्यायालय की खंडपीठ का निर्णय अगली खंडपीठ पर बाध्यकारी होता है। अगली खंड पीठ या तो इसका पालन कर सकती है या इससे असहमत होने पर पूर्ण बेंच गठित करने के लिए ऐसे फैसले को मुख्य न्यायाधीश के पास भेज सकती है। इसकी सराहना नहीं की जा सकती जिस तरह से इस बाद के फैसले ने,

(भले ही यह सही नतीजे पर पहुंचा हो) उसी उच्च न्यायालय के पहले के बाध्यकारी खंड पीठ के फैसले से निपटा है। इस फैसले को भी केवल इस कारण से रद्द किया गया है कि इसने पहले के बाध्यकारी फैसले का पालन नहीं किया। [पैरा 24] [668-डी-एफ; 669-ए]

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग बनाम साधना चौधरी 1996 (6) पूरक एससीआर 392: (1996) 10 एससीसी 536; उदय सिंह डागर बनाम भारत संघ 2007 (6) एससीआर 707: (2007) 10 एससीसी 306; त्र्यंबक दामोदर राजपुरकर बनाम आसाराम हीरामन पाटिल 1962 पूरक 1 एससीआर 700; भारत संघ बनाम अंतरराष्ट्रीय ट्रेडिंग कंपनी 2003 (1) पूरक एससीआर 55: (2003) 5 एससीसी 437; सेठी ऑटो सर्विस स्टेशन वी. डीओए 2008 (14) एससीआर 598: (2009) 1 सेकंड 180 - संदर्भित।

मामला कानून संदर्भ

1996 (6) पूरक एससीआर 392	संदर्भित	पैरा 10
2007 (6) एससीआर 707	संदर्भित.	पैरा 11
1962 पूरक 1 एससीआर 700	संदर्भित	पैरा 14
2003 (1) पूरक एससीआर 55	संदर्भित	पैरा 18
2008 (14) एससीआर 598	संदर्भित	पैरा 19

सिविल अपील क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 2891-2900/2015

डब्ल्यू.ए. संख्या 893, 894, 900 और 942 से 945 ऑफ़ 2010 और डब्ल्यू.पी. संख्या 9483/2010 में मद्रास उच्च न्यायालय की खंड बेंच के निर्णय और आदेश दिनांक 06.12:2010 से।

साथ में

सिविल अपील संख्या 2901, 2902, 2903, 2904-2906, 2907-2908, 2909, 2910, 2911, 2912, 2913, 2914-2915 और, 2916 of 2015 और अवमानन याचिका (सी) संख्या 286-287/2014

नलिनी चिदंबरम, एशा मोहपात्रा, विकास मेहता, वी. प्रभाकर, आर. चंद्रचूड़, ज्योति प्रशार, अमित कुमार, अभिषेक गुप्ता, ऐश्वर्या भाटी, मधुरिमा घोष, नेहा मीना, अमित वर्मा, हेमेंद्र शर्मा, टी. गोपाल, पवन, सैनी, अंशुमान, अनुज भंडारी, आरती गुप्ता, अंकित मिश्र, मरूफ खान, रवींद्र एस. गरिया, सुषमा सुरी, अपीलकर्ताओं की और से।

श्रीधर पोतराजू, मुकेश वर्मा, मेनका गुरुस्वामी, हिमांशु अग्रवाल, विवेक पॉल ओरियल, बी.वी. बलराम दास, रविंद्र अग्रवाल, शैलेंद्र शर्मा, जी.एस मणि, आर.सतीश, एम.पी. पार्थनान, एस. गौथमन, सुब्रमोणियम प्रसाद, गोपाल सिंह, नवीन प्रकाश, गोविन्द गोयल, संजय कुमार यादव, अंकित गोयल, डॉ. कैलाश चंद, एस. एस. शामशेरी, अमित शर्मा, संदीप कोहली, रुचि कोहली, सूर्य कांत, जयंत भट्ट, हामिद खान, मिलिंद कुमार, टी.वी. जॉर्ज, राकेश तनेजा, सत्य लिप्सु रे, मोहिंदर जीत सिंह रूपल,

यामनी फ्यांग, प्रगति नीखरा, अर्जुन हरकौली, नितिन कुमार ठाकुर, प्रतिवादियों की और से।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया –

आर. एफ. नरीमन, जे.

1. सभी विशेष अनुमति याचिकाओं में अनुमति दी जाती है।

2. हमारे सामने अधिक संख्या में अपीलें हैं जिनमें चार उच्च न्यायालयों के निर्णयों चुनौती दी गई है। दिल्ली उच्च न्यायालय ने 6 दिसंबर, 2010 को अपने फैसले में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विनियम (विश्वविद्यालयों और इससे संबद्ध संस्थानों में शिक्षकों की नियुक्ति और कैरियर उन्नति के लिए आवश्यक न्यूनतम योग्यता) (तीसरा संशोधन) की संवैधानिक वैधता का सामना किया था। विनियमन 2009 जिसके तहत विश्वविद्यालयों/कॉलेजों/संस्थानों में व्याख्याताओं की भर्ती और नियुक्ति के लिए नेट/एसएलईटी न्यूनतम पात्रता शर्त है। चुनौती को यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि विनियम अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं करते हैं और वास्तव में, संभावित हैं क्योंकि वे केवल अधिसूचना की तारीख के बाद की गई नियुक्तियों पर लागू होते हैं और उस तारीख से पहले की गई नियुक्तियों पर लागू नहीं होते हैं।दिल्ली उच्च न्यायालय की तर्ज पर, मद्रास और राजस्थान उच्च न्यायालयों ने भी 5 दिसंबर, 2010 और 13 सितंबर, 2012 के अपने निर्णयों द्वारा उपरोक्त नियमों को चुनौती दी है। दूसरी ओर, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने 6 अप्रैल, 2012 के एक फैसले में पाया कि

उक्त नियम केंद्र सरकार के निर्देशों के अनुसार जारी किए गए थे, जो स्वयं यूजीसी अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों के बाहर जारी किए गए थे और इसलिए, पात्रता निर्धारित शर्तें एम. फिल पर लागू नहीं होंगी। और पीएच.डी. 31 दिसंबर, 2009 से पहले प्रदान की गई डिग्रियाँ। हालाँकि, 6 जनवरी, 2014 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक बाद के फैसले ने उपरोक्त फैसले को अलग कर दिया और स्व-समान नियमों को बरकरार रखा। जबकि भारत संघ हमारे समक्ष 5 अप्रैल, 2012 के इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले, एम.फिल. के विरुद्ध अपील कर रहा है। डिग्री धारक और पीएच.डी. डिग्री धारक जिन्हें अभी तक किसी विश्वविद्यालय/कॉलेज/संस्थान में सहायक प्रोफेसर के रूप में नियुक्त नहीं किया गया है, वे अन्य सभी अपीलों में हमारे समक्ष अपीलकर्ता हैं।

3. इन अपीलों में विवाद की सराहना के लिए आवश्यक तथ्य निम्नलिखित हैं:-

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956, भारत के संविधान की प्रविष्टि 66 सूची I, अनुसूची VII के तहत लागू होने वाले विश्वविद्यालयों में मानकों के समन्वय और निर्धारण के लिए प्रावधान करने के लिए संसद द्वारा अधिनियमित किया गया था। अधिनियम की धारा 4 के द्वारा, अधिनियम की धारा 12 द्वारा सौंपे गए कार्यों को पूरा करने के लिए एक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की जाती है। हम इन अपीलों में

सीधे तौर पर इस अधिनियम की दो धाराओं, अर्थात् धारा 20 और 26 से संबंधित हैं: -

20. केंद्रीय सरकार द्वारा निर्देश. - (1) योग इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों के निर्वहन में राष्ट्रीय उद्देश्यों से सम्बंधित नीति सम्बन्धी प्रश्नों पर ऐसे निर्देशों से मार्गदर्शन प्राप्त करेगा जो केंद्रीय सरकार द्वारा उसे दिए जाएँ ।

(2) यदि केंद्रीय सरकार और योग के बीच यह विवाद उठता है कि कोई प्रश्न राष्ट्रीय उद्देश्यों से सम्बंधित नीति का है या नहीं तो उस पर केंद्रीय सरकार का विनिश्चय अंतिम होगा।

26. विनियम बनाने की शक्ति. - (1) आयोग, निम्नलिखित बातों के लिए, इस अधिनियम और तदधीन बनाये गए नियमों से सांगत [विनियम राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बना सकता है] अर्थात -

(क) आयोग की बैठकों को और बैठकों में कार्य संचालन की प्रक्रिया को विनियमित करना;

(ख) उस रीति को जिससे और उन प्रयोजनों को जिनके लिए धारा 9 के अधीन आयोग के साथ व्यक्ति सहयुक्त किये जा सकते हैं, विनियमित करना;

(ग) आयोग द्वारा नियुक्त कर्मचारियों की सेवा की शर्तें और निबंधन विनिर्दिष्ट करना;

(घ) उन संस्थाओं या संस्थाओं के वर्गों को विनिर्दिस्ट करना जिनको धारा 2 के खंड ((f) के अधीन आयोग द्वारा मान्यता दी जा सकती है;

(ड.) उन अर्हताओं को परिनिश्चित करना जो विश्वविद्यालय के अध्यापन कर्मचारिवृंद में नियुक्त किये जाने वाले किसी व्यक्ति से, विद्या की उस शाखा को ध्यम में रखते हुए जिसमे उस व्यक्ति द्वारा शिक्षण दिया जाना प्रत्याशित है, सामान्यतया अपेक्षित है:

(च) किसी विश्वविद्यालय द्वारा किसी उपाधि के लिए जाने के लिए शिक्षण के न्यूनतम स्तारमानों को परिनिश्चित करना;

(छ) विश्वविद्यालयों में स्तरामानों के बनाये रखने को और काम या सुविधाओं की एकसूत्रता को विनियमित करना;

(ज) धारा 12 के खंड (गगग) में विनिर्दिष्ट संस्थाओं की स्थापना को और ऐसे संस्थाओं से सम्बंधित अन्य विषयों को विनियमित करना;

(झ) वे विषय विनिर्दिष्ट करना, जिनकी बाबत फीसें भारित की जा सकती हैं और फीसों के ऐसे मापमान विनिर्दिष्ट करना, जिनके अनुसार किसी महाविधालय द्वारा धरा 12क की उपधारा (2) के अधीन फीसें भारित की जा सकती हैं;

(ञ) वह रीति विनिर्दिष्ट करना जिससे धारा 12क की उपधारा (4) के अधीन जांच कराई जा सकती है।

(2) उपधारा (1) के खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग) या खंड (घ) या खंड (ज) या खंड (झ) या खंड (ञ) के अधीन कोई विनियम केंद्रीय अर्कर के पूर्वानुमोदन के बिना नहीं बनाया जाएगा:

(3) इस धारा द्वारा दी [उपधारा (1) के खंड (झ) और खंड (ञ) को छोड़कर] प्रदत्त विनियम बनाने की शक्ति के अंतर्गत विनियमों को या उनमे से किसी को ऐसे तारिख से, जो इस अधिनियम के प्रारंभ की तारिख से पूर्वतर तारिख नहीं है, भूतलक्षी प्रभाव देने की शक्ति होगी किन्तु किसी विनियम को इस प्रकार भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया जाएगा कि उससे किसी ऐसे व्यक्ति के, जिसको ऐसा विनियम लागू होता है, हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।

4. उक्त अधिनियम की धारा 26(1)(ई) के तहत प्राधिकृत शक्तियों का प्रयोग करके, यूजीसी ने 1982 में नियम बनाए, जिसमें महाविधालयों के व्याख्याता पद के शिक्षण के पद के लिए आवश्यकता की गई योग्यता को निम्नलिखित रूप में निर्धारित किया:

"एम. फिल. डिग्री या स्नातकोत्तर स्टार से परे मान्यता प्राप्त डिग्री।"

1986 में, यूजीसी ने विश्वविद्यालय और कॉलेज शिक्षा के विभिन्न पहलुओं की जाँच करने के लिए मल्होत्रा समिति का गठन किया था। इसने सिफारिश की कि व्याख्याता पद के लिए कुछ न्यूनतम योग्यताएँ निर्धारित की जानी चाहिए। उक्त समिति की रिपोर्ट के अनुसार, यूजीसी ने 1982 के नियमों को खत्म करते हुए 19 सितंबर, 1991 को नियम बनाए और

लेक्चरर बनने की पात्रता के लिए एक परीक्षा के रूप में अन्य योग्यताओं के अलावा नेट पास करने का प्रावधान किया। 21 जून 1995 के एक संशोधन द्वारा, 1991 के नियमों में एक प्रावधान जोड़ा गया जिसके द्वारा जिन अभ्यर्थियों ने अपनी पीएच.डी. थीसिस जमा कर दी है या 31 दिसंबर, 1993 को या उससे पहले एम.फिल परीक्षा उत्तीर्ण करने वालों को व्याख्याता पद पर नियुक्ति के लिए उक्त पात्रता परीक्षा से छूट दी गई है। यह 2002 तक जारी रहा, एकमात्र बदलाव यह हुआ कि 31 दिसंबर, 2002 तक बढ़ाई गई तारीखों के धारक को पीएचडी थीसिस के लिए छूट जारी रही। यह स्थिति 2008 तक जारी रही जब मुंगेकर समिति ने अपनी अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें सिफारिश की गई कि एम.फिल. वाले उम्मीदवार के अलावा व्याख्याता की नियुक्ति के लिए नेट या पीएच.डी. डिग्री को अनिवार्य आवश्यकता बनाया जाना चाहिए। 12 नवंबर, 2008 को, उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने यूजीसी अधिनियम की धारा 22 के तहत एक निर्देश जारी किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ निम्नानुसार प्रावधान किया गया: -

> "यूजीसी, उच्च शिक्षा के मानकों को बनाए रखने के राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति के लिए, इस आदेश के जारी होने की तारीख से तीस दिनों की अवधि के भीतर उचित नियम बनाएगा, जिसमें यह निर्धारित किया जाएगा कि शिक्षण पदों पर नियुक्त सभी व्यक्तियों के लिए नेट/एसएलईटी में

अर्हता प्राप्त करना आम तौर पर अनिवार्य होगा। उच्च शिक्षा में व्याख्याता/सहायक प्रोफेसर, और केवल वे व्यक्ति जिनके पास पीएच.डी. की डिग्री है। आयोग द्वारा अधिसूचित कार्यक्रम में नामांकित/प्रवेशित होने के बाद, विशेषज्ञ की राय के आधार पर खुद को संतुष्ट करने के बाद कि वह इसके द्वारा निर्धारित पीएचडी के मानकीकरण की प्रक्रिया के अनुरूप है या हमेशा रहा है, और यह भी कि पीएचडी की डिग्री यूजीसी द्वारा अधिसूचित किसी विश्वविद्यालय या मानित विश्वविद्यालय संस्थान द्वारा प्रदान की गई थी, क्योंकि उसने इस उद्देश्य के लिए आयोग द्वारा बनाए गए नियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पहले ही अनुपालन कर लिया था।"

5. उक्त मार्गदर्शिका के पालन करते हुए, यूजीसी ने 2009 की विवादित विनियमों को लागु किया, जिसका तीसरा संशोधन निम्नलिखित रूप से प्रदान करता है:

"विश्वविद्यालयों/कॉलेजों/संस्थानों में व्याख्याताओं की भर्ती और नियुक्ति के लिए नेट/एसएलईटी न्यूनतम पात्रता शर्त बनी रहेगी।

हालाँकि, बशर्ते कि उम्मीदवार, जो "विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (पीएचडी डिग्री प्रदान करने के लिए न्यूनतम मानक और प्रक्रिया), विनियमन 2009 के अनुपालन में पीएच.डी. डिग्री से सम्मानित हैं या उन्हें सम्मानित किया

गया है, उन्हें विश्वविद्यालयों/कॉलेजों/संस्थानों में सहायक प्रोफेसर या समकक्ष पद की भर्ती और नियुक्ति के लिए नेट/एसएलईटी की न्यूनतम पात्रता शर्त की आवश्यकता से छूट दी जाएगी।"

परंतुक में पीएचडी की अधिकतम संख्या से संबंधित कई नई शर्तों का उल्लेख किया गया है जैसे पीएचडी डिग्री के लिए कड़े प्रवेश मानदंड, शोध पत्र प्रकाशित होना, पीएच.डी. थीसिस का मूल्यांकन कम से कम दो विशेषज्ञों द्वारा किया जाना, जिनमें से एक राज्य आदि के बाहर का विशेषज्ञ होगा इत्यादि।

6. इसके बाद मंत्रालय द्वारा अधिनियम की धारा 20 के तहत 30 मार्च, 2010 को एक और निर्देश जारी किया गया, जिसमें यूजीसी को निम्नानुसार निर्देशित किया गया: -

"मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 की धारा 20 के तहत दिनांक 30.3.2010 को एक और आदेश जारी किया जिसमें यूजीसी को निम्नानुसार निर्देशित किया गया:

(i) कि यूजीसी उक्त विनियमों के लागू होने के बाद 2009 के नेट विनियमों के आवेदन से छूट के लिए विशिष्ट मामलों पर विचार नहीं करेगा, या तो विशिष्ट व्यक्तियों के लिए या किसी विशिष्ट विश्वविद्यालय/संस्थान/कॉलेज के लिए यूजीसी (न्यूनतम) के आवेदन से विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों की नियुक्ति और कैरियर उन्नति के

लिए योग्यताएं) विश्वविद्यालयों/कॉलेजों/संस्थानों में व्याख्याता के रूप में नियुक्ति के लिए तीसरा संशोधन विनियम, 2009;

(ii) कि केंद्र सरकार द्वारा दिनांक 12 नवंबर, 2008 को जारी नीति निर्देशों को पूर्ण रूप से प्रभावी करने के लिए यूजीसी द्वारा इस निर्देश के जारी होने की तारीख से 30 दिनों के भीतर यूजीसी विनियम 2000 के खंड 2 के दूसरे प्रावधान में उचित संशोधन किया जाएगा; और

(iii) कि यूजीसी द्वारा 23 फरवरी, 2010 को आयोजित अपनी 468 वीं बैठक में एजेंडा आइटम संख्या 6.04 और 6.05 के तहत नेट की प्रयोज्यता से विशिष्ट छूट देने का निर्णय राष्ट्रीय नीति के विपरीत होने के कारण लागू नहीं किया जाएगा।

उपरोक्त निर्देशों को यूजीसी द्वारा इसके बाद क्रियान्वित किया जायेगा।"

7. इस निर्देशिका के क्रम में 30 जून, 2010 को यू.जी.सी ने 2010 के विनियम बनाए, पैरा 3.3.1 में कहा गया है:

"3.3.1. विश्वविद्यालयों/कॉलेजों/संस्थानों में सहायक प्रोफेसरों की भर्ती और नियुक्ति के लिए NET/SLET/SET न्यूनतम पात्रता शर्त बनी रहेगी।

हालाँकि, परन्तु कि उम्मीदवार, जो पीएच.डी. से सम्मानित हैं या हो चुके हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (पीएचडी डिग्री प्रदान करने के लिए न्यूनतम मानक और प्रक्रिया) विनियम, 2009 के अनुसार डिग्री को विश्वविद्यालयों/कॉलेजों/संस्थानों में सहायक प्रोफेसर समकक्ष पदों की भर्ती

और नियुक्ति के लिए NET/SLET/SET की न्यूनतम पात्रता शर्त की आवश्यकता से छूट दी जाएगी।"

8. 12 अगस्त, 2010 और 27 सितंबर, 2010 के दो प्रस्तावों द्वारा, यूजीसी ने राय दी कि चूंकि नियम संभावित प्रकृति के हैं, इसलिए 10 जुलाई, 2009 को या उससे पहले एम. फिल. डिग्री प्राप्त करने वाले सभी उम्मीदवार और 10 जुलाई, 2009 को पीएचडी डिग्री प्राप्त करने वाले सभी व्यक्ति या 31 दिसंबर, 2009 से पहले और इस तिथि से पहले पीएचडी के लिए खुद को पंजीकृत किया था, लेकिन बाद में ऐसी डिग्री प्रदान की गई है, उन्हें व्याख्याता/सहायक प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति के उद्देश्य से नेट की आवश्यकता से छूट दी जाएगी।

9. हालाँकि, केंद्र सरकार ने 3 नवंबर, 2010 को पत्र द्वारा यूजीसी को सूचित किया कि वे आयोग के निर्णय से सहमत नहीं हो सके और कहा कि परिणामस्वरूप व्याख्याता/सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति चाहने वाले उम्मीदवार को निर्धारित न्यूनतम योग्यता पूरी करनी होगी। यूजीसी द्वारा नेट परीक्षा उत्तीर्ण करने की न्यूनतम पात्रता शर्त शामिल है।

10. दिल्ली, मद्रास और राजस्थान उच्च न्यायालय के फैसलों की आलोचना करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 26(3) स्पष्ट रूप से एक विनियमन को संभावित होने का अधिकार देती है, लेकिन किसी भी व्यक्ति के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती है, जिस पर ऐसा विनियमन लागू हो सकता है। इसलिए, उन्होंने तर्क दिया कि अनुच्छेद 14

के साथ-साथ इस उप-धारा दोनों के तहत, चूंकि सभी एम.फिल और पीएच.डी. धारकों को बार-बार आश्वासन दिया गया था कि यदि वे 2009 से पहले ऐसे धारक थे तो उन्हें नेट परीक्षा उत्तीर्ण करने से छूट दी जाएगी। विनियमों को इस प्रकार नहीं बनाया जाना चाहिए कि उन पर इस परीक्षा का बोझ डाला जाए। उन्होंने आगे तर्क दिया कि धारा 26(2) के तहत, धारा 26(1)(ई) और (जी) के अनुसरण में बनाए गए नियमों के लिए केंद्र सरकार की पूर्व मंजूरी की आवश्यकता नहीं है। परिणामस्वरूप, विवादित नियम ख़राब हैं क्योंकि वे केंद्र सरकार के आदेश का पालन करते हैं जिसकी आवश्यकता नहीं है। इसके अलावा, इससे पता चलेगा कि जब शिक्षण स्टाफ में नियुक्त किए जाने वाले व्यक्तियों की योग्यता की बात आती है, तो यूजीसी एक विशेषज्ञ निकाय है, जिस पर ऐसी योग्यताओं और परिणामस्वरूप ऐसी योग्यताओं से छूट का निर्णय लेने का अधिकार छोड़ दिया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है कि असमान लोगों के साथ एम.फिल उत्तीर्ण करने वालों के समान ही व्यवहार किया गया है। और 2009 से पहले की पीएचडी डिग्रियां एक अलग वर्ग में आती थीं, जिसमें उन डिग्रियों से एक स्पष्ट अंतर था, जो समय-समय पर यूजीसी द्वारा बनाए रखा गया था। उन्होंने इस प्रस्ताव के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग बनाम साधना चौधरी (1996) 10 एससीसी 536 में इस न्यायालय के फैसले पर दृढ़ता से भरोसा किया और साथ ही इस प्रस्ताव पर भी भरोसा किया कि व्याख्याता के पद पर नियुक्ति के मामले में उनकी वैध अपेक्षा समाप्त कर दी गई थी।

11. दूसरी ओर, भारत संघ और यूजीसी के विद्वान वकील ने इस तथ्य पर जोर दिया कि धारा 26 के तहत नियमों को अधिनियम के अनुरूप बनाना होगा और धारा 20 अधिनियम का बहुत हिस्सा है। इसलिए, यदि नीति के प्रश्नों पर निर्देश केंद्र सरकार द्वारा बनाए जाते हैं, तो नियमों को आवश्यक रूप से ऐसे निर्देशों के अधीन होना चाहिए। यह भी बताया गया कि यदि कोई प्रश्न उठता है कि क्या कोई विषय राष्ट्रीय उद्देश्यों से संबंधित नीति का प्रश्न है, तो केंद्र सरकार का निर्णय अंतिम होगा। इसके बाद उन्होंने उदय सिंह डागर बनाम भारत संघ (2007) 10 एससीसी 306 पर भरोसा किया, इस प्रस्ताव के लिए कि किसी व्यक्ति को किसी पेशे में प्रवेश करने का अधिकार केवल तभी होगा जब उसके पास अपेक्षित योग्यता होगी और ऐसी योग्यता का होना संभावित होगा यदि एक योग्यता है जो किसी पेशे में उसके प्रवेश से पहले किसी भी समय निर्धारित की जाती है।

12. यह स्पष्ट है कि धारा 26 आयोग को केवल तभी नियम बनाने में सक्षम बनाती है जब वे यूजीसी अधिनियम के अनुरूप हों। इसका मतलब यह है कि ऐसे नियमों को अधिनियम की धारा 20 के अनुरूप होना चाहिए और अधिनियम की धारा 20 के तहत केंद्र सरकार को राष्ट्रीय उद्देश्यों से संबंधित नीति के प्रश्नों पर निर्देश देने की शक्ति दी गई है जो आयोग को अपने कार्यों के निर्वहन में मार्गदर्शन करेगी। अधिनियम के तहत. इसलिए, यह स्पष्ट है कि 12 नवंबर, 2008 और 30 मार्च, 2010 के

दोनों निर्देश राष्ट्रीय उद्देश्यों से संबंधित नीति के प्रश्नों से संबंधित निर्देश हैं, क्योंकि मुंगेकर समिति की रिपोर्ट पर आधारित होने के कारण, केंद्र सरकार ने महसूस किया कि एक आम विश्वविद्यालयों/कॉलेजों/संस्थानों में व्याख्याता/सहायक प्रोफेसरों की नियुक्ति के लिए समान राष्ट्रव्यापी परीक्षा न्यूनतम पात्रता शर्त होनी चाहिए। इसका स्पष्ट कारण यह है कि एम.फिल डिग्री या पीएचडी डिग्री अलग-अलग विश्वविद्यालयों/संस्थानों द्वारा उत्कृष्टता के अलग-अलग मानकों के साथ प्रदान की जाती हैं। ऐसे कई विश्वविद्यालयों द्वारा एम.फिल/पीएचडी डिग्रियां प्रदान किए जाने की कल्पना करना काफी संभव है, जिनमें उत्कृष्टता के कड़े मानक नहीं थे। नीतिगत मामले के रूप में विचार करते हुए कि यूजीसी अधिनियम द्वारा शासित सभी संस्थानों में व्याख्याताओं/सहायक प्रोफेसरों की नियुक्ति (जो पूरे देश में संस्थान हैं), एक अतिरिक्त योग्यता के रूप में न्यूनतम पात्रता शर्त के रूप में एक राष्ट्रीय प्रवेश परीक्षा की आवश्यकता महसूस की गई, जो विभिन्न द्वारा एम.फिल/पीएचडी डिग्री प्रदान करने में व्यापक असमानताओं को देखते हुए आवश्यक हो गई है। विश्वविद्यालय/संस्थान। इन निर्देशों द्वारा प्राप्त किया जाने वाला उद्देश्य स्पष्ट है कि यूजीसी अधिनियम द्वारा शासित विश्वविद्यालयों/कॉलेजों/संस्थानों में सभी व्याख्याताओं के पास नियुक्ति से पहले उत्कृष्टता का एक निश्चित न्यूनतम मानक होना चाहिए। ये निर्देश न केवल अधिनियम की धारा 20 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए बनाए गए हैं, बल्कि मानकों के समन्वय और निर्धारण के लिए भी बनाए गए हैं जो यूजीसी अधिनियम के मूल में निहित हैं। इसलिए, यह स्पष्ट है कि

धारा 26 के तहत बनाया गया कोई भी विनियमन अधिनियम की धारा 20 के तहत केंद्र सरकार द्वारा जारी निर्देशों के अनुरूप होना चाहिए।

13. यह तर्क दिया गया कि चूंकि किसी विश्वविद्यालय के शिक्षण स्टाफ में नियुक्त होने वाले व्यक्तियों की आवश्यक योग्यताओं को परिभाषित करने वाले नियमों के लिए केंद्र सरकार की पिछली मंजूरी आवश्यक नहीं थी, इसलिए सरकार की ऐसे मामलों में कोई भूमिका नहीं है और वह निर्देश नहीं दे सकती है। आयोग। इस तर्क में कोई दम नहीं है क्योंकि यह धारा 26(1) की शुरुआती पंक्तियों को नजरअंदाज करता है जिसमें कहा गया है कि आयोग केवल अधिनियम के अनुरूप नियम बना सकता है, जो अधिनियम की धारा 20 के तहत केंद्र सरकार की शक्ति लाता है। एक शक्ति जो धारा 26 की उपधारा (2) से स्वतंत्र है। किसी विनियमन के लिए केंद्र सरकार की पिछली मंजूरी की आवश्यकता नहीं हो सकती है और फिर भी उसे अधिनियम की धारा 20 के तहत जारी निर्देश के अनुरूप होना होगा। वास्तव में, यहां तक कि जहां कोई विनियमन केवल केंद्र सरकार की पूर्व मंजूरी से ही बनाया जा सकता है, वहां विनियमन बनने से पहले और बाद में केंद्र सरकार की भूमिका होगी। पहले मामले में, यह विनियमन को अपनी पिछली मंजूरी प्रदान करेगा। एक बार जब विनियमन कानून बन जाता है, तो यह धारा 20 के तहत निर्देश जारी कर सकता है, जिसके अनुसार ऐसे निर्देश के अनुरूप उसी विनियमन को संशोधित करना या समाप्त करना पड़ सकता है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि धारा 26(2) वर्तमान

मामले में केंद्र सरकार द्वारा आयोग को जारी किए गए निर्देशों के रास्ते में नहीं आएगी।

14. दूसरा दिलचस्प तर्क यह है कि ऐसे नियमों को भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया जाना चाहिए ताकि किसी भी व्यक्ति के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े, जिस पर ऐसा विनियमन लागू हो सकता है। इस विवाद की सराहना करने के लिए, मौजूदा अधिकार और निहित अधिकार के बीच अंतर करना आवश्यक है। त्र्यंबक दामोदर राजपुरकर बनाम आसाराम हीरामन पाटिल, 1962 पूरक 1 एससीआर 700 मामले में यह भेद बड़ी प्रसन्नता के साथ किया गया था। उस मामले में यह सवाल उठा कि क्या बॉम्बे टेनेंसी और कृषि भूमि संशोधन अधिनियम की धारा 5 में किए गए संशोधन को भूतलक्षी कहा जा सकता है क्योंकि इसका संचालन मौजूदा अधिकारों के दायरे में आता है। इस न्यायालय के पांच माननीय न्यायाधीशों की पीठ ने माना कि धारा 5 का कोई भूतलक्षी नहीं है। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

> "इसके अलावा, यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि प्रतिवादियों को बेदखल करने का अपीलकर्ता का अधिकार किरायेदारी की समाप्ति पर ही उत्पन्न होगा, और वर्तमान मामले में यह उसे 31 मार्च, 1953 को उपलब्ध होगा यदि वैधानिक प्रावधान इस बीच किरायेदारी का जीवन नहीं बढ़ाया था। यह सच है कि अपीलकर्ता ने 11 मार्च 1952 को

प्रतिवादियों को नोटिस दिया था क्योंकि वह निस्संदेह ऐसा करने का हकदार था; लेकिन एक मकान मालिक के रूप में कब्ज़ा प्राप्त करने का उनका अधिकार केवल नोटिस देने पर ही अर्जित नहीं हुआ, बल्कि यह पट्टा समाप्त होने की तारीख पर उनके पक्ष में अर्जित हुआ। नोटिस में निर्दिष्ट अवधि समाप्त होने और किरायेदारी वास्तव में समाप्त होने के बाद ही मकान मालिक को किरायेदार को बेदखल करने और जमीन पर कब्जा प्राप्त करने का अधिकार मिलता है। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर, 1952 के अधिनियम 33 में संशोधन करने वाले प्रतिवादियों को बेदखल करने का अपीलकर्ता को प्राप्त अधिकार इससे पहले कि अपीलकर्ता को 1952 के अधिनियम 33 में संशोधन करके बेदखल करने का अधिकार मिलता, उत्तरदाताओं ने हस्तक्षेप किया और वैध नोटिस के रूप में वैधानिक आवश्यकता का पालन करने की मांग करके उसे उस अधिकार से वंचित कर दिया, जिसे किरायेदारों को बेदखल करने के लिए दिया जाना है।

इस संबंध में मौजूदा अधिकार और निहित अधिकार के बीच अंतर करना प्रासंगिक है। जहां कोई क़ानून भविष्य में लागू होता है, उसे भूतलक्षी नहीं कहा जा सकता केवल इसलिए कि इसके संचालन के दायरे में सभी मौजूदा अधिकार

शामिल हैं। जैसा कि वेस्ट बनाम ग्वेने में बकले, एल.जे. द्वारा देखा गया [(1911) 2 Ch1 पीपी 11, 12 पर] भूतलक्षी संचालन एक मामला है और मौजूदा अधिकारों में हस्तक्षेप दूसरा है। "यदि कोई अधिनियम यह प्रावधान करता है कि पिछली तारीख में कानून को वही माना जाएगा जो वह नहीं था, तो मैं समझता हूं कि वह अधिनियम पूर्वव्यापी होगा। ये मामला नहीं है। यहां सवाल यह है कि क्या इसकी सामग्री के संबंध में कोई निश्चित प्रावधान है पट्टों का तात्पर्य सभी पट्टों या केवल कुछ पट्टों के मामले से है, अर्थात् अधिनियम पारित होने के बाद निष्पादित पट्टों से। प्रश्न अधिनियम के दायरे और दायरे के बारे में है, न कि उस तारीख के बारे में जब से अधिनियम द्वारा अधिनियमित नए कानून को कानून माना जाएगा।" ये टिप्पणियाँ परिवहन और संपत्ति कानून अधिनियम, 1892 (55 और 56 वियतनाम सी. 13) की धारा 3 के पूर्वव्यापी निर्माण के प्रश्न से निपटने में की गई थीं। सार रूप में धारा 3 में यह प्रावधान है कि सभी पट्टों में लाइसेंस या सहमति के बिना पट्टे पर दी गई भूमि या संपत्ति को सौंपने, पट्टे पर देने या कब्जा छोड़ने, या निपटान करने के खिलाफ एक अनुबंध, शर्त या समझौता शामिल है, ऐसी वाचा, शर्त या समझौता, जब तक कि पट्टे में इसके विपरीत एक स्पष्ट

प्रावधान शामिल है, इसे इस आशय के प्रावधान के अधीन माना जाएगा कि ऐसे लाइसेंस या सहमति के लिए या उसके संबंध में कोई जुर्माना या जुर्माने की प्रकृति में कोई धनराशि देय नहीं होगी। यह माना गया कि उक्त धारा के प्रावधान सभी पट्टों पर लागू होते हैं चाहे अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले निष्पादित किया गया हो या बाद में; और, बकले, एल.जे. के अनुसार, इस निर्माण ने अधिनियम को संचालन में पूर्वव्यापी नहीं बनाया; यह केवल भविष्य में सभी पट्टों के तहत मौजूदा अधिकारों को प्रभावित करता है, चाहे अधिनियम की तारीख से पहले या बाद में निष्पादित किया गया हो। संशोधित अधिनियम की धारा 5(1) के संचालन के संबंध में स्थिति, जिससे हम चिंतित हैं, हमें काफी हद तक समान प्रतीत होती है।

जीवाभाई पुरषोत्तम बनाम छगन कार्सन [1958 की सिविल अपील संख्या 153 पर 27-3-1961 को निर्णय] में धारा 34(2)(ए) के पूर्वव्यापी संचालन के संबंध में इस न्यायालय के निर्णय के लिए एक समान प्रश्न उठाया गया था। 1952 के अधिनियम 33 में संशोधन करने की बात कही और इस न्यायालय ने दुर्लभ फकीरभाई बनाम झावेरभाई भ1काभाई [(1956) 58 बीएलआर 85] में उस

बिंदु पर बॉम्बे उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले को मंजूरी दे दी है। दुर्लभभाई मामले [(1956) 58 बीएलआर 85] में यह माना गया था कि संशोधन अधिनियम का प्रासंगिक प्रावधान उन सभी कार्यवाहियों पर लागू होगा जहां संशोधन अधिनियम लागू होने के बाद नोटिस की अवधि समाप्त हो गई थी और संशोधन अधिनियम का प्रभाव इससे अधिक कुछ नहीं था कि इसने मकान मालिक के अपने किरायेदार से कब्ज़ा प्राप्त करने के अधिकार पर एक नई और अतिरिक्त सीमा लगा दी। उस फैसले में यह देखा गया था कि "धारा 34(1) के तहत एक नोटिस किरायेदार को किरायेदारी समाप्त करने के मकान मालिक के इरादे की एक घोषणा मात्र है; लेकिन यह मकान मालिक के लिए हमेशा खुला है कि वह अपने इरादे को पूरा न करे। इसलिए, किरायेदारी समाप्त करने के मकान मालिक के अधिकार पर उप-धारा 2 (ए) के तहत प्रतिबंध के आवेदन के लिए, महत्वपूर्ण तारीख नोटिस की तारीख नहीं है, बल्कि वह तारीख है जिस पर किरायेदारी समाप्त करने का अधिकार परिपक्व होता है; यही वह तारीख है जिस दिन किरायेदारी समाप्त हो जाती है।"

15. यहां तथ्यों पर भी यही स्थिति है। निहित अधिकार तभी उत्पन्न होगा जब हमारे समक्ष अपील करने वालों में से किसी को वास्तव में व्याख्याता/सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया गया हो। उस तिथि तक, किसी भी अपीलकर्ता में कोई निहित अधिकार नहीं है। उच्चतम स्तर पर, अपीलकर्ता केवल यह तर्क दे सकते हैं कि उन्हें व्याख्याता/सहायक प्रोफेसर के पद के लिए विचार किए जाने का अधिकार है। यह अधिकार हमेशा न्यूनतम पात्रता शर्तों के अधीन होता है, और जब तक अपीलकर्ताओं की नियुक्ति नहीं हो जाती, तब तक अलग-अलग समय पर अलग-अलग शर्तें निर्धारित की जा सकती हैं। केवल इसलिए कि नेट परीक्षा के रूप में एक अतिरिक्त पात्रता शर्त निर्धारित की गई है, इसका मतलब यह नहीं है कि अपीलकर्ताओं का कोई निहित अधिकार प्रभावित होता है, न ही इसका मतलब यह है कि ऐसी न्यूनतम पात्रता शर्त निर्धारित करने वाला विनियमन संचालन में पूर्वव्यापी होगा। ऐसी शर्त केवल संभावित होगी क्योंकि यह केवल नियुक्ति के स्तर पर ही लागू होगी। इसलिए, यह स्पष्ट है कि हमारे समक्ष निजी अपीलकर्ताओं की दलीलें विफल होनी चाहिए।

16. याचिकाकर्ताओं के एक विद्वान अधिवक्ता ने केंद्र सरकार के 12 नवंबर, 2008 के निर्देश की भाषा के आधार पर तर्क दिया कि सरकार चाहती थी कि यूजीसी केवल "आम तौर पर" नेट को योग्यता के रूप में निर्धारित करे। लेकिन इसका मतलब यह नहीं था कि यूजीसी को बिना किसी छूट के यह योग्यता निर्धारित करनी थी। हम इस तर्क को इस सरल

कारण से स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि "आम तौर पर" शब्द "अनिवार्य" शब्द से पहले आता है और यह स्पष्ट है कि निर्देश की भाषा का 2009 और 2010 के यूजीसी नियमों द्वारा अक्षरशः और आत्मा दोनों में पालन किया गया है।

17. अनुच्छेद 14 पर आधारित तर्कों को समान रूप से खारिज करना होगा। यह स्पष्ट है कि 2009/2010 के यूजीसी नियमों के साथ पढ़े गए केंद्र सरकार के निर्देशों का उद्देश्य उच्च शिक्षा के मानकों में उत्कृष्टता बनाए रखना है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण करने की न्यूनतम पात्रता शर्त रखी गई है। सच है, अतीत में यूजीसी द्वारा छूट दी गई होगी, लेकिन केंद्र सरकार अब नीति के रूप में महसूस करती है कि कोई भी छूट यूजीसी द्वारा शासित विश्वविद्यालयों/कॉलेजों/संस्थानों में शिक्षण मानकों की उत्कृष्टता से समझौता करेगी। जाहिर है, इसमें कुछ भी मनमाना या भेदभावपूर्ण नहीं है - वास्तव में यह देखना यूजीसी का मुख्य कार्य है कि ऐसे मानक कमजोर न हों।

18. वैध अपेक्षा के सिद्धांत को इस न्यायालय के दो निर्णयों में निम्नानुसार निस्तारित गया है:

यूनियन ऑफ इंडिया बनाम इंटरनेशनल ट्रेडिंग कंपनी 8 (2003) 5 सेकंड 437 में, यह अभिनिर्धारित किया गया था:

"23. प्रतिबंध की तर्कसंगतता वस्तुनिष्ठ तरीके से और आम जनता के हितों के दृष्टिकोण से निर्धारित की जानी है, न कि उन व्यक्तियों के हितों के दृष्टिकोण से जिन पर प्रतिबंध लगाए गए हैं या अमूर्त विचार पर। किसी प्रतिबंध को केवल इसलिए अनुचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि किसी दिए गए मामले में यह कठोरता से लागू होता है। यह निर्धारित करने में कि क्या कोई अनुचितता शामिल है; कथित उल्लंघन के अधिकार की प्रकृति, लगाए गए प्रतिबंध का अंतर्निहित उद्देश्य, बुराई की सीमा और तात्कालिकता, जिससे निवारण की मांग की गई, लगाए जाने की असंगतता, प्रासंगिक समय पर मौजूदा स्थिति, न्यायिक फैसले में प्रवेश करती है . वैध अपेक्षा की तर्कसंगतता को संबंधित व्यापार या व्यवसाय से संबंधित परिस्थितियों के संबंध में निर्धारित किया जाना चाहिए। जहां देश के हितों का संबंध हो या जहां व्यवसाय देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता हो, वहां किसी विशिष्ट व्यक्ति के पक्ष में किसी विशेष व्यवसाय को रद्द करना उचित है। (देखें परभणी ट्रांसपोर्ट कॉप. सोसाइटी लिमिटेड बनाम क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण [एआईआर 1960 एससी 801 :62 जन्म एलआर 521], श्री मीनाक्षी मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ [(1974) 1 एससीसी 468: एआईआर 1974

एससी 366], हरि चंद सारदा बनाम मिज़ो जिला परिषद [एआईआर 1967 एससी 829] और कृष्णन कक्कंथ बनाम केरा सरकार/ए [(1997) 9 सेकंड 495: एआईआर 1997 एससी 128]।"

19. इसी प्रकार, सेठी ऑटो सर्विस स्टेशन बनाम ओडीए (2009) 1 सेकंड 180 में, यह अभिनिर्धारित किया गया था: -

"33. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जहां राज्य की कार्रवाई सार्वजनिक नीति या सार्वजनिक हित में है, वहां वैध अपेक्षा की अवधारणा की कोई भूमिका नहीं है, जब तक कि की गई कार्रवाई शक्ति का दुरुपयोग न हो। अदालत को सार्वजनिक प्राधिकरण के विवेक को नहीं छीनना चाहिए जो कानून के तहत निर्णय लेने के लिए सशक्त है और अदालत से एक वस्तुनिष्ठ मानक लागू करने की अपेक्षा की जाती है जो निर्णय लेने वाले प्राधिकारी को पसंद की पूरी श्रृंखला छोड़ देता है जिसके लिए विधायिका का इरादा माना जाता है। यहां तक कि ऐसे मामले में जहां निर्णय बिना किसी कानूनी सीमा के पूरी तरह से निर्णय लेने वाले प्राधिकारी के विवेक पर छोड़ दिया गया है और यदि निर्णय निष्पक्ष और निष्पक्ष रूप से लिया गया है, तो अदालत उस व्यक्ति के मामले में प्रक्रियात्मक निष्पक्षता के आधार पर हस्तक्षेप

नहीं करेगी जिसका हित पर आधारित है। वैध अपेक्षा प्रभावित हो सकती है। इसलिए, वैध अपेक्षा अधिक से अधिक उन आधारों में से एक हो सकती है जो न्यायिक समीक्षा को जन्म दे सकती है लेकिन राहत देना बहुत सीमित है। (हिन्दुस्तान विकास निगम देखें) [(1993) 3 एससीसी 499]"

20. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग बनाम साधना चौधरी (1996) 10 एससीसी, 536 में, यह सच है कि पैराग्राफ 22 में, हमारे सामने कुछ अपीलकर्ताओं को विश्वविद्यालयों में व्याख्याता के पद पर नियुक्ति के मामले में वैध अपेक्षा रखने वाले के रूप में संदर्भित किया गया है। /कॉलेज, लेकिन उस मामले का यहां कोई सीधा आवेदन नहीं होगा। वहां उस समय पीएचडी को दी गई छूट को चुनौती दी गई थी। धारकों और एम.फिल. डिग्री धारक. यह पाया गया कि इस तरह की छूट का उस समय प्राप्त की जाने वाली वस्तु से तर्कसंगत संबंध था, जो एक समझदार अंतर पर आधारित थी। इसलिए, उक्त छूट को अनुच्छेद 14 की चुनौती निरस्त कर दी गई। यह मानते हुए भी कि उक्त निर्णय 2009 के विनियमों के बाद भी लागू रहेगा, व्यापक सार्वजनिक हित के लिए एक वैध अपेक्षा हमेशा बनी रहनी चाहिए। वर्तमान मामले में व्यापक जनहित यूजीसी संस्थानों में पढ़ाने के लिए उच्च योग्य सहायक प्रोफेसरों से कम नहीं है। भले ही, इसलिए, हमारे सामने निजी अपीलकर्ताओं को एक वैध उम्मीद थी कि इस

तथ्य को देखते हुए कि यूजीसी ने उन्हें नेट से छूट दी है और यह कहना जारी रखा है कि 12 नवंबर, 2008 के सरकारी निर्देश के बाद भी ऐसी छूट दी जानी चाहिए। यूजीसी अधिनियम द्वारा शासित संस्थानों में पढ़ाने के लिए उम्मीदवारों के बीच सबसे मेधावी के चयन के व्यापक सार्वजनिक हित को स्वीकार करना होगा।

21. इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने 6 अप्रैल, 2012 के अपने फैसले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है:

"104. निष्कर्ष:

1. केंद्र सरकार, यूजीसी अधिनियम, 1956 की धारा 20 (1) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सिफारिशों और धारा 26 के तहत इसके द्वारा बनाए गए नियमों को रद्द करने या रद्द करने की शक्तियां और अधिकार नहीं रखती है। 1)(ई) योग्यता को परिभाषित करने वाले अधिनियम का, जो आमतौर पर विश्वविद्यालय के शिक्षण पदों पर नियुक्त होने के लिए किसी भी व्यक्ति के पास होना आवश्यक है, जिसके लिए यूजीसी अधिनियम, 1956 की धारा 26 (2) के तहत, केंद्र सरकार की पूर्व मंजूरी की आवश्यकता नहीं है।

2. यूजीसी द्वारा उन लोगों को दी गई छूट, जिन्हें 2009 के विनियमों के लागू होने से पहले 31.12.2009 से पहले पीएचडी डिग्री प्रदान की गई थी, राष्ट्रीय उद्देश्य से संबंधित नीति का प्रश्न नहीं है, जिस पर केंद्र सरकार

यूजीसी अधिनियम, 1956 की धारा 20 के तहत निर्देश जारी कर सकती थी।

3. यूजीसी एक विशेषज्ञ निकाय है जिसका गठन मानकों को निर्धारित करने और विश्वविद्यालय शिक्षा के प्रचार और समन्वय के लिए विशेषज्ञों के साथ किया गया है। विशेषज्ञ समितियों के गठन और उनकी सिफारिशों पर विचार करने के बाद विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति के लिए योग्यता और ऐसी योग्यताओं की सीमित छूट के मामले में इसके द्वारा की गई सिफारिशें केंद्र सरकार द्वारा पर्यवेक्षण और नियंत्रण के अधीन नहीं हैं। विश्वविद्यालय में शिक्षकों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता निर्धारित करने के मामले में केंद्र सरकार के पास यूजीसी के प्रस्तावों को रद्द करने की कोई पर्यवेक्षी शक्ति नहीं है।

4. पीएचडी धारक, जिन्हें 31.12.2009 से पहले पीएचडी डिग्री प्रदान की गई थी, उन्हें नेट/एसएलईटी/सेट प्राप्त किए बिना विश्वविद्यालय में शिक्षण पदों पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के किसी भी अधिकार में परिपक्व होने की वैध उम्मीद नहीं कही जा सकती है। योग्यताएं, जब तक कि यूजीसी ने कोई छूट प्रदान न की हो। 5. एजेंडा मद क्रमांक पर संकल्प. 23.2.2010 को आयोजित यूजीसी की 468वीं बैठक में 6.04 और 6.05, और एजेंडा आइटम नंबर 2.08 दिनांक 12.8.2010 पर अपनी 471वीं बैठक में यूजीसी के प्रस्ताव में 2009 के विनियमों में तीसरे

संशोधन को प्रकृति में संभावित बनाने की सिफारिश की गई है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय सहित विश्वविद्यालयों पर बाध्यकारी है।

6. याचिकाकर्ताओं को नियमों में तीसरे संशोधन के लागू होने से पहले क्रमशः वर्ष 2009 और वर्ष 2003 में पीएचडी डिग्री प्रदान की गई थी, जो 31.12.2009 को लागू हुई थी, और इस प्रकार वे पात्र हैं, भले ही वे नेट/एसएलईटी न हों। /SET योग्य, यदि उन्हें 31.12.2009 से पहले यूजीसी द्वारा अनुशंसित 11 में से किन्हीं छह शर्तों के साथ पीएचडी डिग्री प्रदान की गई हो।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। याचिकाकर्ताओं को विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में अतिथि संकाय के लिए व्याख्याता के रूप में नियुक्ति के लिए विचार के लिए पात्र माना जाता है, बशर्ते कि वे यूजीसी द्वारा निर्धारित ग्यारह में से छह परीक्षणों में से किसी एक को पूरा करते हों, और जिन्हें पीएचडी पुरस्कार के लिए आवश्यक बनाया गया हो। 2009 के विनियमों के तीसरे संशोधन के तहत डिग्री। याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत सामग्री के आधार पर विश्वविद्यालय इस बात पर विचार करने के लिए स्वतंत्र होगा कि वे अपनी पीएचडी प्रदान करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुशंसित ग्यारह परीक्षणों में से छह को पूरा करते हैं।"

22. हम पहले ही बता चुके हैं कि यूजीसी अधिनियम की धारा 20 के तहत केंद्र सरकार के निर्देश राष्ट्रीय उद्देश्य से संबंधित नीति के प्रश्नों से

कैसे संबंधित हैं। हमने यह भी बताया है कि विनियमन बनाने की शक्ति अधिनियम की धारा 20 के तहत जारी निर्देशों के अधीन है। यह तथ्य कि यूजीसी एक विशेषज्ञ निकाय है, इस मामले को आगे नहीं बढ़ाता है। यूजीसी अधिनियम में विचार किया गया है कि ऐसे विशेषज्ञ निकाय को केंद्र सरकार द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार कार्य करना होगा।

23. इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने प्रोफेसर एस.पी. त्यागराजन की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समिति की सिफारिश की, जिसने यह निर्धारित किया कि यदि ऐसे विश्वविद्यालय द्वारा पीएचडी की डिग्री प्रदान करते समय समिति द्वारा निर्धारित ग्यारह मानदंडों में से छह संतुष्ट थे, तो ऐसी पीएचडी डिग्री पर्याप्त होनी चाहिए। ऐसे व्यक्ति को नेट परीक्षा उत्तीर्ण करने की अतिरिक्त योग्यता के बिना व्याख्याता/सहायक प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति के लिए अर्हता प्राप्त करना। ऐसा प्रतीत होता है कि यूजीसी ने स्वयं त्यागराजन समिति की इस सिफ़ारिश पर अमल नहीं किया है। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने अपने द्वारा जारी अंतिम निर्देशों में इस समिति की सिफारिश को प्रभावी करना उचित समझा। जब यूजीसी ने स्वयं उक्त समिति की सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया है, तो हमें समझ में नहीं आता कि उच्च न्यायालय ने ऐसी सिफारिशों को कैसे लागू करना चाहा। इसलिए, हम 6 अप्रैल, 2012 के इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले को पूरी तरह से रद्द करते हैं।

24. एसएलपी (सी) एन0.3054-3055/2014 में, उसी उच्च न्यायालय के 5 जनवरी, 2014 के एक फैसले में एक खंड पीठ फिर से विपरीत निष्कर्ष पर पहुंची। यह भी एक ऐसा मामला है जिससे हमें थोड़ी तकलीफ़ होती है. उसी उच्च न्यायालय की खंडपीठ का निर्णय अगली खंडपीठ पर बाध्यकारी होता है। अगली खंड पीठ या तो इसका पालन कर सकती है या इससे असहमत होने पर पूर्ण बेंच गठित करने के लिए ऐसे फैसले को मुख्य न्यायाधीश के पास भेज सकती है। हम उस तरीके की सराहना नहीं करते हैं जिसमें इस बाद के फैसले ने, (भले ही यह सही नतीजे पर पहुंचा हो) उसी उच्च न्यायालय के पहले बाध्यकारी खंड पीठ के फैसले से निपटा है। वास्तव में, जैसा कि अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने हमें बताया था, पहले के फैसले के तथ्यों और बाद के फैसले के तथ्यों के बीच पैराग्राफ 20 में किया गया अंतर बिल्कुल भी अंतर नहीं है। जिस तरह 2012 के फैसले में पीएचडी डिग्रियां 2009 से पहले दी गई थीं, उसी तरह 2014 के फैसले में भी पीएचडी डिग्रियां, जिनसे वह फैसला संबंधित था, 2009 से पहले दी गई थीं। इसलिए, दोनों मामलों के तथ्यों में कोई अंतर नहीं है। इससे भी अधिक परेशान करने वाली बात यह है कि 2012 के फैसले में निष्कर्ष के केवल उप पैरा 4 को ऊपर दिए गए पैराग्राफ 104 के किसी भी अन्य उप पैराग्राफ के बिना किसी परिणाम पर पहुंचने के लिए निर्धारित किया गया है जो कि पहले के फैसले के बिल्कुल विपरीत है। इस फैसले को भी केवल इस कारण से रद्द किया गया है कि इसने पहले के बाध्यकारी फैसले का पालन नहीं किया। हालाँकि, इसका इस तथ्य

पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा कि 2014 के फैसले में रिट याचिकाएँ खारिज कर दी गई हैं। आज हमारे द्वारा दिए गए फैसले में तर्क को ध्यान में रखते हुए उन्हें खारिज किया जाता है। इस घोषणा के मद्देनजर, 2014 की अवमानना याचिका संख्या 286-287 में कुछ भी नहीं बचा है, जिसे निष्फल मानकर निस्तारित किया जाता है। परिणामस्वरूप, दिल्ली, मद्रास और राजस्थान उच्च न्यायालयों की अन्य अपीलें भी खारिज कर दी जाती हैं। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

निधि जैन

अपील खारिज और अवमानना याचिका निस्तारित की गई।

यह अनुवाद अर्तिफिसिअल इंटेलिजेंस टूल **‘सुवास’** की सहायता से अनुवादक **अधिवक्ता नाजिश रशीद** द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।